चेतना और अध्यात्म का अन्तर्सम्बन्ध

वार्ताकार

प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन

पूर्व डीन, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

दर्शन और विज्ञान का क्षेत्र

दर्शन और विज्ञान की दृष्टि से चेतना के स्वरूप पर विमर्श करने के पूर्व यह जानना जरूरी है कि विज्ञान का प्रयोगात्मक क्षेत्र पदार्थ जगत् है, जिसे मैटर या पुद्गल कहते हैं, जबकि दर्शन का चिन्तन क्षेत्र इससे अधिक विकसित है, जो आत्मा के गुणों और ज्ञान से सम्बन्धित है। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं द्वारा चेतना के स्वरूप का अध्ययन करने समय उसे इंद्रियों, मन, मस्तिष्क और शरीर के विभिन्न तत्त्वों से जोड़ा है, जबकि जैन दर्शन के आचार्यों ने चेतना का आत्मा का स्थायी गुण माना है, जो भौतिक साधनों या पदार्थों के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

चेतना का स्वरूप और उपयोग

चेतना (कान्ससनेस) शब्द के मुख्यता दो अर्थ किये जाते हैं–(1) जागरण या सावधानी, आलसरहित (अलर्टमेस या अवेयरनेस) तथा दूसरा अर्थ है–जीवन्त होने का अनुभव (फीलिंग ऑफ लिविंगनेस)। जैन दर्शन में जागरण के लिए अप्रमाद शब्द का प्रयोग हुआ है और अनुभव के लिए उपयोग, प्राण, संज्ञा शब्द प्रयुक्त हैं।[1] इस प्रकार चेतना का प्राथमिक आधार या स्रोत आत्मा (वनस) को माना गया है। आत्मा के द्वारा ही शरीर के विभिन्न अंगों–इंद्रिय, मस्तिष्क, मन आदि में चेतना प्रवाहित होती है। संक्षेप में आत्मा का स्वरूप ज्ञान (नालेज) और दर्शन (इनट्यूशन) है, इन दोनों के प्रयोग को उपयोग शब्द से कहा गया है। यह उपयोग (Application) ही चेतना है।

चेतना के कई स्तर

जैन दर्शन में अनुसार चेतना के कई स्तर Levels हैं।[2] यथा–

(क) अप्रमादी होना (Alertness)

(ख) उपयोग (Knowing activity)

(ग) प्राण–प्रवृत्ति (इंद्रिय, मन, वाणी का प्रयोग)

(घ) शरीर का संचालन

(च) संज्ञा (आहार, भय, मैथुन, संग्रह आदि के प्रति उत्सुकता)

(छ) वेदना (सुख–दु:ख की अनुभूति, Feelings)

(ज) वीर्य (उत्साह का प्रदर्शन , Enthusism)

इंद्रियां, शरीर, मन, वाणी

सम्पूर्ण विकसित चेतना मुक्त आत्माओं में प्राप्त होती है, जो सभी कर्मों से रहित होते हैं। चेतना की मात्रा (Degree) या प्रकाशन का स्तर शुभ एवं अशुभ कर्मों में लिप्त मनुष्यों के जीवन पर निर्भर होता है। प्राणी, मनुष्य, साधारण गृहस्थ, श्रावक मुनि की जीवन चर्या एवं उनके विचारों से चेतना घटती बढ़ती है। जैन धर्म के अनुसार इंद्रिया, शरीर, मन, वाणी आदि सभी पुद्‌गल, अजीव पदार्थों से बने हैं। किन्तु उनका आत्मा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए उनमें चेतनता (क्रियात्मकता, अनुभव आदि) चेतन आत्मा से प्राप्त होती है। आत्मा की चेतनता के अभाव में ये सब निष्क्रिय हो जाते हैं।[3]

चेतन स्वरूप आत्मा के स्तर

सभी दर्शनों में, विचारकों के मत में आत्मा का मूल गुण चेतना है सभी आत्माओं में चेतन गुण पाया जाता है अतः स्वरूप की दृष्टि से सभी आत्माएँ एक समान हैं। यही अद्वैतरूपी अध्यात्म है किन्तु आत्माओं द्वारा संसार में संचालित व्यवहार और क्रियाओं में अन्तर दिखायी पड़ता है, इस कारण प्राचीन जैन आचार्यों ने चेतना के प्रकारों की चर्चा की है। प्रायः सभी दर्शनों में प्रकारान्तर से चेतना के भेद दृष्टिगत होते हैं। आत्मा का चेतना–लक्षण दर्शन और ज्ञान के रूपों में प्रकट होता है। जगत् की वस्तुओं को सामान्य रूप से जानना दर्शन उपयोग है। यह **निराकार चेतना** है, जो प्रमोदरूप, आनन्दमय है और जब वस्तु के विशेष स्वरूप को ज्ञान उपयोग जानता है तो वह **ज्ञान–साकार चेतना** है। इन दोनों प्रकार की चेतनाओं से आत्मा के अस्तित्व का बोध होता है।

त्रिविध चेतना, आत्मा

आचार्य कुन्दकुन्द आदि दार्शनिकों ने त्रिविध चेतना का उल्लेख किया है। यथा–

1. ज्ञान चेतना (शुद्ध स्वभाव को जानना)
2. कर्म चेतना (रागादि भावों में परिणमन करना)
3. कर्मफल चेतना (सुख–दुःख आदि का अनुभव करना)

चेतना के इन तीन प्रकारों के आधार पर आत्मा के तीन भेद किये गये हैं[5] –

1. परमात्मा (ज्ञान चेतना) 2, अन्तरात्मा (कर्मफल चेतना)
3. बहिरात्मा (कर्मचेतना)

आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में भी चेतना के तीन रूप माने गये हैं[6] –

1. जानना (Knowing) 2. अनुभव करना (Feeling)
3. इच्छा या संकल्प करना (Willing)

आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से आत्मा

1.ज्ञानात्मा (बहिरात्मा) **2.** मददात्मा (अन्तरात्मा) **3.** शान्तात्मा (परमात्मा) इनको शरीरत्मा, जीवात्मा और परमात्मा भी कहा गया है।

मोक्षपाहुड ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है कि इंद्रिया **बहिरात्मा** हैं, आत्म संकल्प **अन्तरात्मा** है और कर्मकलंक से मुक्त आत्मा **परमात्मा** है। यथा–

अक्खाणि बहिरप्पा अन्तर अप्पा हु अप्पसंकल्पो।
कम्मकलंक–विमुक्को परमप्पा भण्णए देवो।।

इसी परमात्मा–स्वरूप चेतना को जानने वाला, देखने वाला पुरुष परम समाधि में लीन होता है, वही पण्डित कहा जाता है। यथा–

देह विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ।
परम समाहि–परिट्ठयउ पंडिउ सो जि हवेइ।।[8]

तीन प्रकार की चेतनाओं वाली आत्मा

इन तीन प्रकार की चेतनाओं वाली आत्मा को धारक व्यक्तियों को व्यवहार की दृष्टि से चित्रों में भी देखा जा सकता है।

चित्र बहिरात्मा (संसार व्यसनी व्यक्ति)

चित्र अन्तरात्मा (मुनि)

चित्र परमात्मा (सिद्ध)

संसारी बहिरात्मा

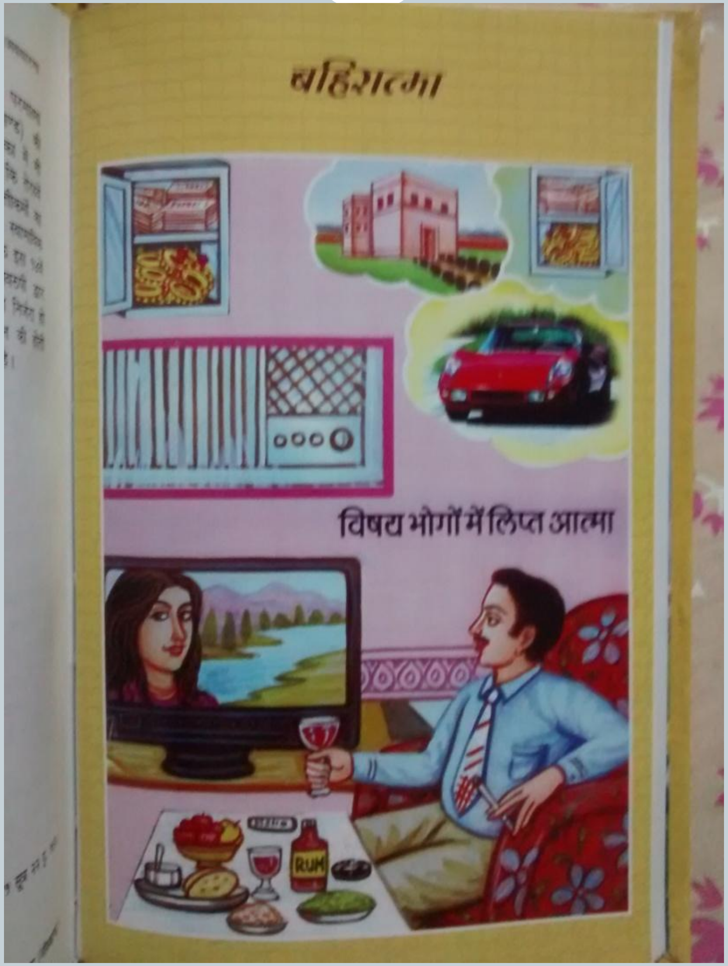

साधक अन्तरात्मा

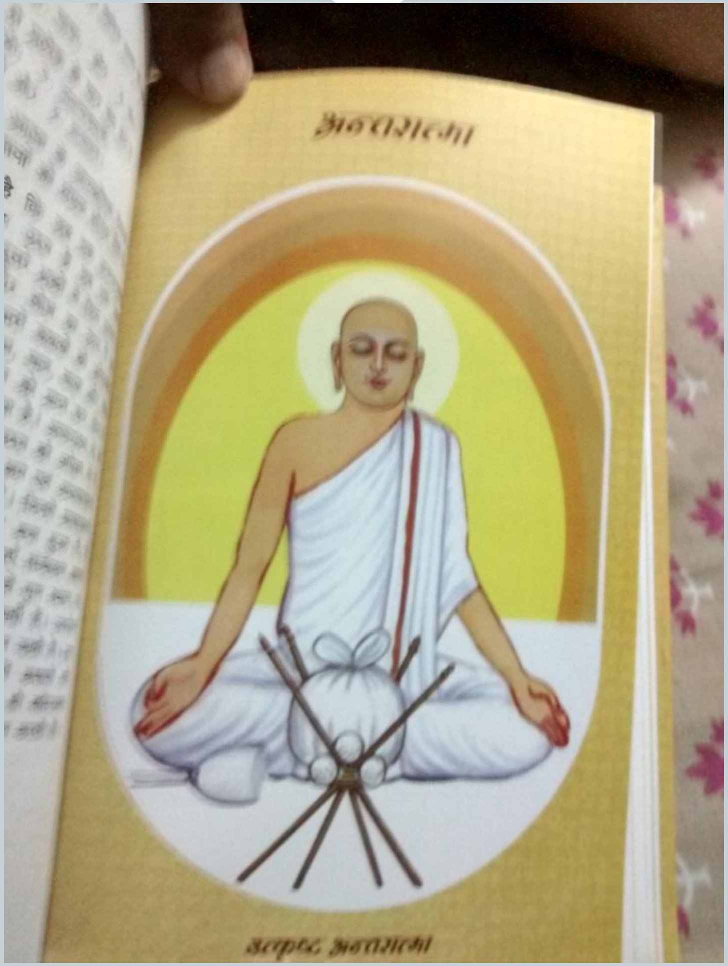

अर्हत, सिद्ध परमात्मा

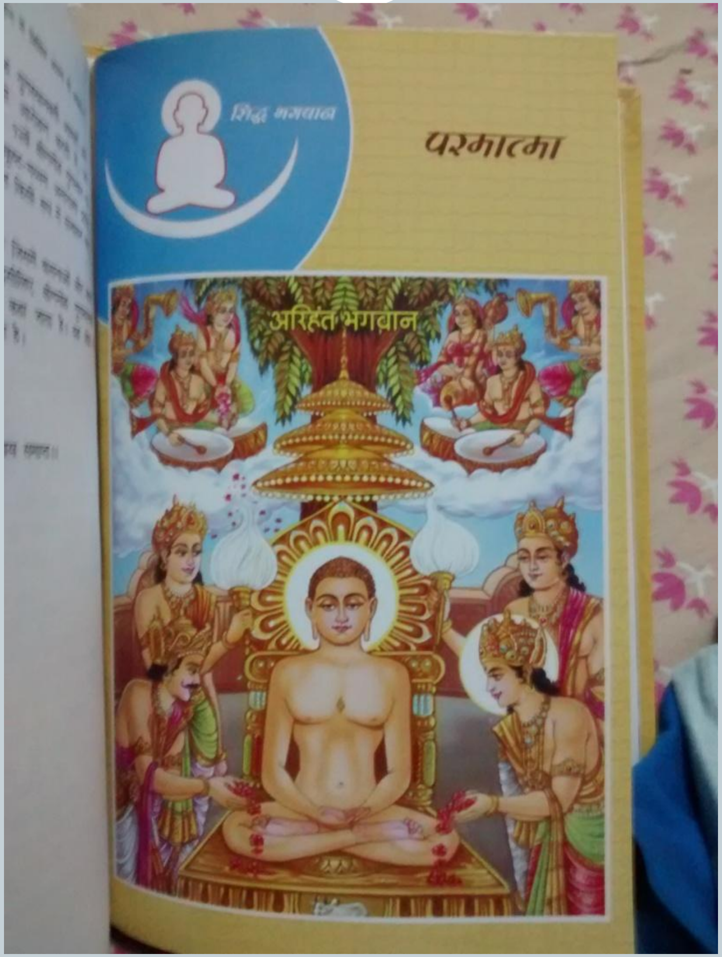

चेतना और मनोवृत्तियाँ

चेतन स्वरूपी आत्मा का अस्तित्व भले ही अब तक वैज्ञानिक प्रमाणित नहीं कर पाये हों, किन्तु प्राचीन साहित्य में विचारकों ने आत्मा के अस्तित्व के अनेक प्रमाण दिये हैं। जैन ग्रन्थों में कहा गया है कि लोक में विचार है तो विचारक चेतना भी है। विचारपूर्वक सम्पादित कार्य दिखायी देते हैं तो कार्यों को सम्पादित करने वाला स्वचेतन कर्ता आत्मा भी है। अच्छे बुरे (शुभ–अशुभ) कार्यों में नैतिक विवेक है तो उनका कोई उत्तरदायी विवेकवान् आत्मा भी है। संकल्प है तो संकल्पकर्ता चेतन आत्मा भी है। पाश्चात्य विद्वान् देकार्त आदि ने भी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

इस प्रकार आत्मा को एक चेतन आध्यात्मिक तत्त्व के रूप में प्रायः सभी ने स्वीकार किया है। क्योंकि नैतिक उत्तरदायित्त्व, विवेकी चेतना के अभाव में सम्भव नहीं है।

चेतना, आत्मा और मन

चेतना, आत्मा, अध्यात्म के सम्बन्धों पर चर्चा करते हुए विद्वानों ने इनके साथ मन (Mind) के विषय में ही पर्याप्त चिंतन किया है।[१] किसी ने मन को भौतिक जड़ तत्त्व माना है, जो किसी ने मन को चेतन तत्त्व स्वीकार किया है। जैन दार्शनिक मन को जड़–चेतन उभयरूप मानते हैं। मन का भौतिक रूप **द्रव्यमन** है और मन का चेतन रूप **भावमन** है। ज्ञान, अनुभव और संकल्प की चेतन शक्ति मन को चेतन आत्मा से प्राप्त होती है।

वास्तव में मन [mind], जड़ कर्मवर्गणा और चेतन–आत्मा को जोड़ने वाली एक कड़ी है। मन की शक्ति चेतना है, किन्तु उसका कार्य क्षेत्र भौतिक जगत् है। इस प्रकार मन ही बन्धन और मन ही मुक्ति का कारण है। सम्यक्दृष्टि मन का उपयोग चेतना के विकास के लिए करते हैं और मिथ्यादृष्टि, प्रमादी, अज्ञानी व्यक्ति मन का दुरोपयोग कर बन्धन में पड़ते हैं। इस कारण सभी दर्शनों में इच्छा–निरोध और मनोनिग्रह पर बल दिया गया है।

मन की चार अवस्थाएं

. आचार्य हेमचन्द्र ने मन की चार अवस्थाओं का वर्णन किया है–

1. विक्षिप्त मन – (चंचल, भटकने वाला)
2. यातायात मन– (अन्तर–बाहर में उलझा हुआ मन)
3. श्लिष्ट मन– (स्थिर एवं आनंदित मन)
4. सुलीन मन– (आत्मस्वरूप में लीन मन)

बौद्ध, गीता, योग आदि सभी ने इन चार प्रकार के मनों और उनकी मनोवृत्तियों पर चिन्तन किया है।

मन की मनोवृत्तियां और षट लेश्याएं

चेतन आत्मा मन की मनोवृत्तियों का दमन नहीं करता, अपितु उनको शान्त करने का प्रयत्न करता है। कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ आदि) से मनोवृत्तियों दूषित होती है और लेश्याओं (आन्तरिक अशुभ एवं शुभ परिणाम) से मन को बदला जा सकता है। इसके लिए जैन दर्शन में दो सिद्धान्त प्रचलित हैं– अल्पीकरण का सिद्धान्त और यतना (जयणा) का सिद्धान्त। इसके लिए षटलेश्या वृक्ष का उदाहरण दिया जाता है कि व्यक्ति अपनी जरूरत के हिसाब से वस्तुओं का प्रयोग करना सीखे तो चेतन आत्मा विकास की ओर गतिशील होगी।

Shatleshya Tree in Jainism

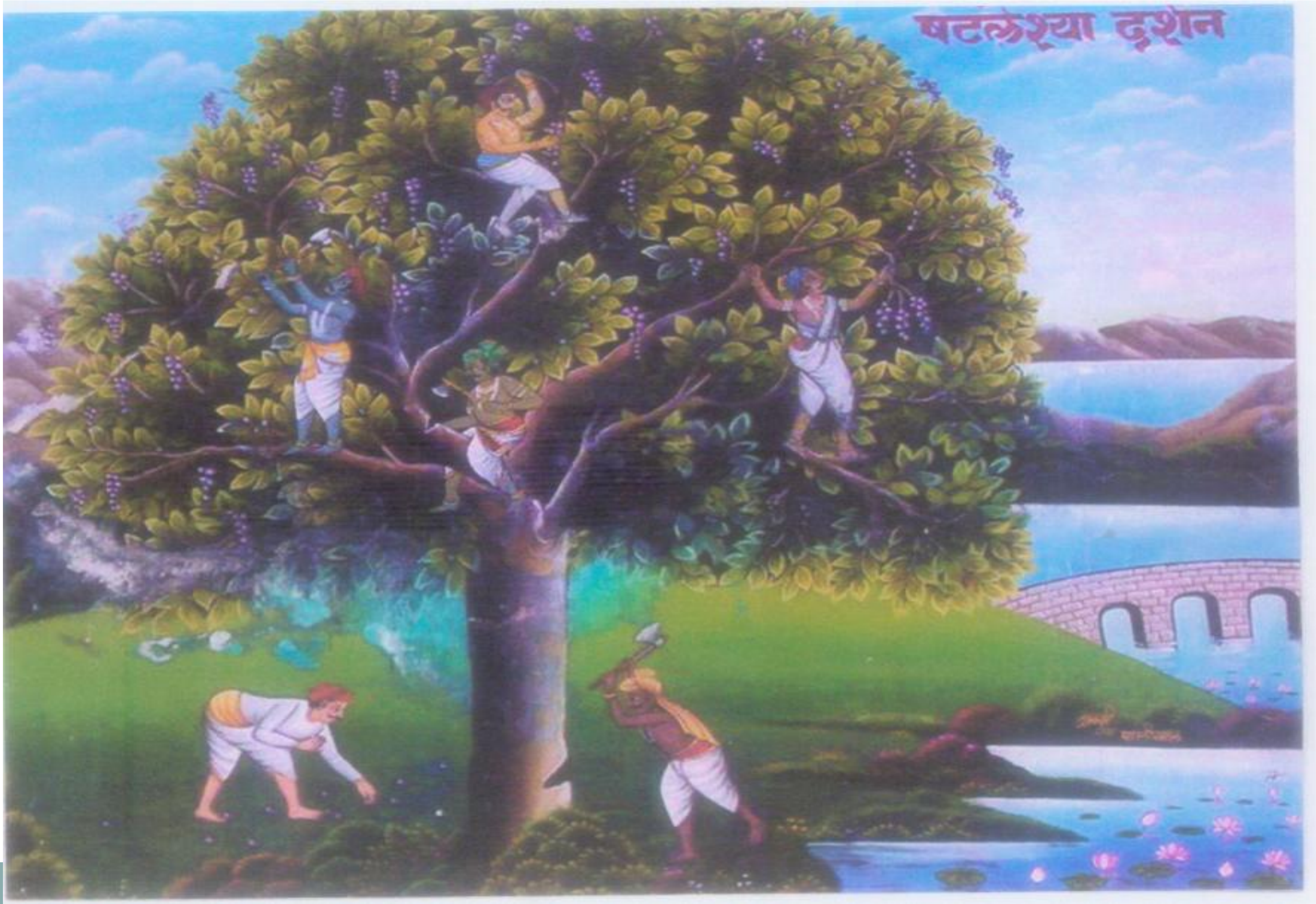

संसार दर्शन : मधुबिन्दु दृष्टान्त

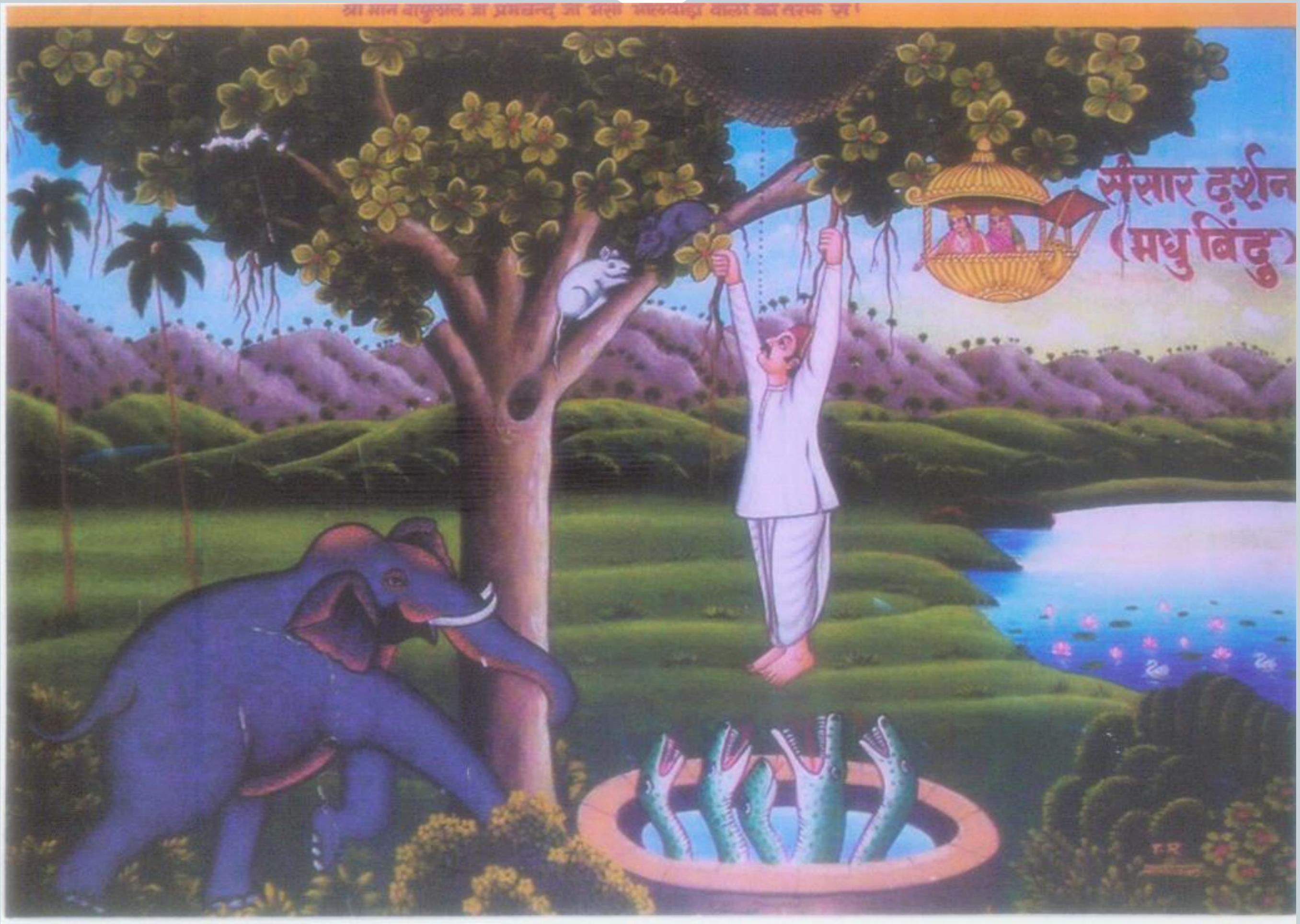

अध्यात्म : लोकातीत आत्मा की अनुभूति

'अध्यात्म' शब्द में ही उसका स्वरूप निहित है। अर्थात् जिसकी आधारभूमि आत्मा है और जिसके द्वारा आत्मा के स्वरूप को जाना जाता है, वह **अध्यात्म** है। आत्मा के चरम विकास की ओर प्रयत्नशील होना **आध्यात्मिक** होना है। आचार्य तुलसी ने अध्यात्म और मानवता को जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उनका अणुव्रत आन्दोलन अध्यात्म–महल तक पहुँचने का राजमार्ग है। आचार्य तुलसी की एक प्रसिद्ध पुस्तक– **चेतना का आकाश–अध्यात्म का सूर्य** इस विषय पर विशेष प्रकाश डालती है।[11]

विकास की चरम परिणति अध्यात्मवाद

जैनदर्शन में **अध्यात्म** के लिए एक विशिष्ट शब्द प्रयोग हुआ है–**शुद्धोपयोग,** जिसका अर्थ है–इन्द्रियगत जीवन से आत्मा के जीवन की ओर गमन। अर्थात् **लोकातीत आत्मा की अनुभूति**। व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर विश्वजनीन कल्याण की ओर प्रवास। इस प्रकार विकास की चरम परिणति **अध्यात्मवाद** है। सही दृष्टि, सही साधन और सम्यक् आचरण से ही सार्थक विकास सम्भव है। तभी अध्यात्मिक जीवन सार्थक है।

विज्ञान, दर्शन और धर्म

दर्शन और धर्म को क्षेत्र अलग–अलग हैं। विज्ञान का सम्बन्ध दर्शन से है, विश्लेषण से है, प्रयोग से है। दर्शन और विज्ञान जगत् की व्याख्या करते हैं। चिन्तन को आगे बढ़ाते हैं। जबकि धर्म जगत् में मूल्यों का संरक्षण करता है। सोचने का काम विज्ञान और दर्शन का है, जबकि अनुभूति, आचरण का काम धर्म का है। अतः धर्माचरण का सीधा सम्बन्ध अध्यात्म से है, क्योंकि वह साधना से जुड़ा हुआ है। आचार्य तुलसी एवं आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने अनुभवों से कथन किया है कि **धर्म एवं कर्म को सार्वभौम, सार्वजनिक हितों का संवाहक बनाना ही अध्यात्म है।**

अध्यात्मिक क्षेत्र में **रहस्यवाद**, **गूढ़वाद** आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। **अद्वैत** शब्द अध्यात्म का वाचक है। इन सब शब्दों का तात्पर्य इतना है कि विश्व–कल्याण और धर्माचरण के बीच पड़े हुए पर्दे को हटाना है। यही अद्वैत है। आत्मस्वरूप से साक्षात्कार है। अहिंसा और शान्ति की मैत्री ही अध्यात्म है।

अध्यात्म और विज्ञान

अध्यात्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं। मनुष्य की क्रियाशीलता और विज्ञान के साधनों ने विश्व को सुख–सुविधा से युक्त किया है, धर्म को परम्परावादी और रूढ़ होने से विज्ञान बचा सकता है, किन्तु आन्तरकि शान्ति, पवित्रता, जीवन की सुरक्षा के लिए अध्यात्मिक दृष्टि का होना आवश्यक है। केवल भौतिक विकास नहीं, अपितु आत्मा के मूल गुणों – चेतनता और ज्ञान का चरम विकास भी आवश्यक है, यह विकास शुभ आचरण, शुद्ध आचरण से ही सम्भव है। जैन दर्शन में अध्यात्म के विकास के लिए **अर्हत्** को आदर्श माना गया है। वह अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य का भण्डार है। अध्यात्म जीवन का यही प्रतिपाद्य है।

सन्दर्भ

1 .उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन, 28
2. जैन, धर्मचन्द, लेख–'कन्सेप्ट ऑफ कान्ससनेस इन जैनिज्म''
श्रमण, वाराणसी, भाग 16–1, 2016
3. भगवतीसूत्र, व्यावर, शतक 11 एवं 12
4. नियमसार, गाथा 150, 181, 152 एवं प्रवचनसार, गाथा 123–25
5. सोगानी, के. सी., जैन धर्म में आचारशास्त्रीय सिद्धान्त, खण्ड 2 जयपुर, पृ. 64–66
6. साध्वी प्रियलताश्री, जैनदर्शन में त्रिविध आत्मा की अवधारणा, शाजापुर, 2007, पृ. 2
7. कठोपनिषद् 13
8. परमात्मप्रकाश, सम्पा. ए. एन. उपाध्ये, आगास, दोहा 14
9. जैन, सागरमल, भारतीय आचारदर्शन–एक तुलात्मक अध्ययन,
शाजापुर, भाग 1, 2010, पृ. 505–13
10. योगशास्त्र, 12–2
11. आचार्य तुलसी, चेतना का आकाश– अध्यात्म का सूर्य, नई दिल्ली, 2009, पृ. 74

29, विद्या विहार कॉलोनी, उत्तरी सुन्दरवास, उदयपुर – 313001